सिनेमा और साहित्यिक कृतियाँ

बबीता[1] and **डॉ. करूर उपाध्याय**[2]
शोधार्थी, शिक्षा विभाग[1]
सहायक प्रोफेसर, शिक्षा विभाग[2]
सनराइज़ विश्वविद्यालय, **अलवर, राजस्थान**

सारांश

साहित्य समाज का दर्पण होता है जो कुछ भी समाज में घटित होता है साहित्यकार के द्वारा उसे साहित्य में स्थान प्राप्त होता है। साहित्य पाठकों को अपने परिवेश के प्रति संवेदनशील बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। सिनेमा भी एक प्रभावशाली माध्यम है जो अपने दर्शकों को निरंतर जागरूक करने का कार्य करता है। उसकी यही जागरूकता समाज और उस में व्याप्त रूढ़ियों को परिष्कृत करने का कार्य करती है जो समाज के विकास में सहायक सिद्ध होती हैं ।सिनेमा और साहित्य के संबंधों की एक लंबी परंपरा चली आ रही है। यह परंपरा मूक फिल्मों से लेकर अब तक चल रही है। अनेक साहित्यिक कृतियों पर सफल असफल फिल्में बनी हुई है। यह प्रश्न इसलिए उपस्थित होता है क्योंकि कई बार साहित्यिक कृति पाठक पर अपना इतना गहरा प्रभाव छोड़ती है कि जब उसे सिनेमा के माध्यम से दर्शाया जाता है तो वह उसके साथ तादात्म्य स्थापित नहीं कर पाता। इस कारण उसकी नजर में जो फिल्म साहित्य आधारित होती है वह उसकी दृष्टि में असफल घोषित हो जाती है ।किसी कृति को पढ़ते समय कल्पना शक्ति के द्वारा पात्र स्थान स्वयं ही गढ़ लेते हैं किंतु सिनेमा हमें पात्रों से मूर्त रूप में रूबरू करवाता है। साहित्य को विस्तार के साथ पढ़ा जा सकता है किंतु सिनेमा में कथानक निश्चित अवधि में सीमित हो जाता है इसलिए उसका संक्षिप्त रूप ही हमारे सामने आता है। अतः विस्तार न होने के कारण साहित्य जितना प्रभाव सिनेमा का नहीं हो पाता है। निर्देशक की रचनात्मकता ही पुराने विषयों को नए रूपों में दर्शकों के सम्मुख लाने का प्रयास करती है। जैसे देवदास फिल्म कई बार बनी लेकिन हर बार कुछ ना कुछ निर्देशक ने अपनी सृजनात्मकता को बनाए रखते हुए समय के हिसाब से परिवर्तन किए। आज समाज में नई सोच रखने वाले फिल्म

निर्माताओं की आवश्यकता है जिससे समाज का उचित मार्गदर्शन हो सके। साहित्य और सिनेमा दोनों यदि साथ साथ चलते हैं तो मनुष्य की कलात्मक दृष्टि के विकास में सहायक हो सकेंगे।

खोजशब्द:- साहित्य, सिनेमा, कथा, पात्र, शैली, दृश्य, संवाद।

प्रस्तावना

साहित्य और सिनेमा दोनों अलग-अलग विधाएं हैं। साहित्य के पठ्य है वही सिनेमा दृश्य परक विधा है। साहित्य संवेदना और अनुभूति प्रधान होता है जिसमें दर्शकों की मांग का ध्यान रखा जाता है क्योंकि इसका संबंध सीधा व्यवसाय से होता है इसलिए जो दर्शकों को चाहिए होता है वही सिनेमा दिखाता है। साहित्य में जो साहित्यिक सामग्री होती है वह दर्शकों की रुचि पर आधारित नहीं होती वरन उसमें साहित्यकार की निजी संवेदना निहित होती है, जिसके द्वारा समाज के यथार्थ रूप को समाज के सामने रखने का प्रयास एक साहित्यकार के द्वारा किया जाता है। सिनेमा कल्पना प्रधान है। भावों की अभिव्यक्ति के लिए ऐसे दृश्यों का निर्माण कर दिया जाता है जो शब्दों के द्वारा संभव नहीं है। वही साहित्य शब्दों के द्वारा जिस परिवेश का निर्माण करता है उसका दृश्यांकन करना फिल्मकार के लिए चुनौती बन जाता है। वह साहित्य से ली गई सामग्री का ज्यों का त्यों रूपांतरण नहीं कर पाता है। वह साहित्य को फिल्म के रूप में प्रस्तुत करना चाहता है और साहित्य फिल्म के सांचे में पूर्णरूपेण उतर नहीं पाता है और यहीं से साहित्य और सिनेमा के अंतः संबंध में विलगाव उत्पन्न हो जाता है। सिनेमा ने अपनी शैशवावस्था में साहित्य को अपनी धात्री के रूप में अपनाकर प्राण तत्व को प्राप्त किया ।सिनेमा ने साहित्य की विभिन्न विधाओं को आधार बनाकर अपनी यात्रा प्रारंभ की। सिनेमा ने पौराणिक कथाओं को आधार बनाकर फिल्में बनाई। 1912 में मुंबई के रामचंद्र गोपाल टोन द्वारा निर्मित फिल्म पुंडरीक को अपार सफलता मिली। यह फिल्म महाराष्ट्र के प्रसिद्धि प्राप्त हिंदू संत के जीवन पर आधारित थी और रामाराव कीर्तिकर द्वारा लिखित नाटक पर आधारित थी। इसके बाद दादा साहब फाल्के द्वारा निर्मित राजा हरिश्चंद्र फिल्म आई। हरिश्चंद्र भारतीय सिनेमा

में पहली फिल्म मानी गई ।पौराणिक चरित्रों को ध्यान में रखकर बनाई गई फिर में है_ भक्त प्रल्हाद, शिव महिमा, विष्णु अवतार, रामायण, उत्तर रामायण, संत तुकाराम, संत नामदेव आदि। सन 1931 में भारत में बोलती फिल्मों का आरंभ आर्देशिर ईरानी द्वारा निर्मित फिल्म आलम आरा से हो गया था। बोलती फिल्मों के आते ही सिनेमा का स्वरूप तीव्रता से बदलने लगा। दर्शक बोलती फिल्मों का इंतजार करने लगे। अब पौराणिक कथाओं से हटकर ऐतिहासिक, सामाजिक फिल्मों का निर्माण होने लगा था। जिनमें अमृत लाल नागर, उपेंद्र नाथ अश्क, प्रेमचंद, वृंदावन लाल वर्मा जैसे साहित्यकारों की कृतियो के ऊपर फिल्में बनी परंतु ये फिल्में ख्याति अर्जित नहीं कर पाई। क्योंकि दर्शकों की प्रवृत्ति मनोरंजनात्मक हो रही थी। फिल्मकारो ने दर्शकों की रूचि को ध्यान में रखकर मनोरंजन के नाम पर रोमांटिक कहानियां, अश्लील दृश्य दिखाना प्रारंभ कर दिया। यद्यपि साहित्य सिनेमा की जननी है परंतु सिनेमा रूपी शिशु व्यस्क होकर अपना अलग अस्तित्व तलाश कर रहा है।

अध्ययन का उद्देश्य

सिनेमा का फलक इतना विस्तृत है कि वह संसार की सारी कलाओं को अपने में समेटे हुए हैं। गायन, नृत्य, वादन, दृश्य, पात्र संवाद आदि कई सारी चीजों पर सिनेमा की प्रसिद्धि निर्भर करती है। जबकि साहित्यकार के विचारों और संवेदना के द्वारा एक साहित्य प्रसिद्धि प्राप्त करता है। दोनों का उद्देश्य समाज में आदर्श स्थापित करना है। अपने इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए सिनेमा अनेक कलाओं का आश्रय लेता है। जबकि साहित्य को शब्दों के अतिरिक्त किसी चीज की आवश्यकता नहीं होती। हम साहित्य पढ़ते समय मनोरंजन की अपेक्षा नहीं करते किंतु सिनेमा देखते हुए हम मनोरंजन चाहते हैं। दोनों के द्वारा ही हमें समाज में परिवर्तन देखने को मिलते हैं। समाज के विकास में सिनेमा और साहित्य दोनों की महत्वपूर्ण भूमिका है। हिंदी साहित्य और सिनेमा के संबंधों की बात करें तो स्थिति बड़ी जटिल नजर आती है। प्रारंभ में सिनेमा ने सफल साहित्यिक कृतियों के फिल्मांकन पर ध्यान लगाया था ।लेकिन जब ऐसी फिल्में बड़े पर्दे पर अपना प्रभाव छोड़ने में सफल नहीं हुई तो धीरे-धीरे साहित्य से सिनेमा का लगाव कम होने लगा जिसका एक कारण यह भी था कि हिंदी के अधिकांश

साहित्यकार एक ओर तो यह इच्छा रखते थे कि उनकी रचना पर फिल्म बने और दूसरी तरफ सिनेमा को दोयम दर्जे का माध्यम भी मानते थे। प्रेमचंद से लेकर उनके बाद तक के साहित्यकारों में यह समस्या बनी रही और एक हद तक आज भी है। बांग्ला लेखक शरतचंद्र के उपन्यास "देवदास" पर हिंदी में चार फिल्में बनी और कम ज्यादा सभी सफल रही। सत्यजीत राय ने प्रेमचंद की कहानी "शतरंज के खिलाड़ी "पर इसी नाम से फिल्म बनाई जिसको वैश्विक स्तर पर प्रशंसा प्राप्त हुई। भगवती चरण वर्मा के उपन्यास" चित्रलेखा" पर भी फिल्म बनी और सफल रही। किंतु बाद में साहित्यिक कृतियों पर बनी फिल्मों को आर्ट फिल्मों के सांचे में रखकर इनका व्यवसायिक और हिट फिल्मों से अलगाव करने का प्रयास किया गया। जिससे ऐसी फिल्मों के आर्थिक पहलू पर प्रश्न चिन्ह अंकित होने लगा और फिल्मकारों ने साहित्यिक कृतियों पर फिल्म बनाने से दूरी रखना शुरू कर दिया। प्रेमचंद की कहानी पर मोहन भावनानी ने "मिल मजदूर" फिल्म बनाई लेकिन प्रेमचंद जी को कहानी में बदलाव के साथ फिल्म बनाना पसंद नहीं आया। एक पत्र में इस बात का जिक्र करते हुए उन्होंने लिखा कि "मजदूर में मैं इतना जरा सा आया हूं कि नहीं के बराबर फिल्म में डायरेक्टर ही सब कुछ है। "आगे भी प्रेमचंद की सेवासदन, रंगभूमि आदि कृतियों पर विभिन्न कंपनियों और निर्माता निर्देशकों द्वारा फिल्मों का निर्माण किया गया लेकिन फिल्मी पर्दे पर वे अपना रंग जमाने में नाकाम रही। प्रेमचंद भी अपनी रचनाओं के प्रस्तुतीकरण से प्रायः अप्रसन्न हीं रहे। फिल्म नगरी को लेकर उन्होंने अपने एक पत्र में लिखा _"यह एक बिल्कुल नई दुनिया है साहित्य से इसका बहुत कम सरोकार है। उन्हें तो रोमांच कथाएं, सनसनीखेज तस्वीरें चाहिए। अपनी ख्याति को खतरे में डाले बगैर मैं जितनी दूर तक डायरेक्टर की इच्छा पूरी कर सकूंगा उतनी दूर तक करूंगा....... जिंदगी में समझौता करना ही पड़ता है। आदर्शवाद महंगी चीज है, बाज दफा उसको दबाना पड़ता है। 1936 में प्रेमचंद की मृत्यु हो गई और इस तरह सिनेमा में उनकी यात्रा अधिक समय तक नहीं चल पाई। प्रेमचंद के बाद भगवती चरण वर्मा, उपेंद्रनाथ अश्क, पांडे बेचन शर्मा उग्र, अमृतलाल नागर भी मुंबई पहुंचे लेकिन शायद इनके साहित्यिक आदर्शों का तालमेल भी सिनेमा की जरूरतो से नहीं बैठा और सब असफल लौट आए। वर्मा जी के उपन्यास "चित्रलेखा "पर समान नाम से केदारनाथ शर्मा

ने दो-दो बार फिल्में बनाई और पहली फिल्म सफल भी रही लेकिन इससे वर्मा जी को सिनेमा जगत में स्थाई आधार नहीं मिल पाया।

साहित्यावलोकन

60 के बाद फिल्म लेखन में यदि कोई अपना स्थान बना पाया तो वह थे गुलशन नंदा। वे निसंदेह हिंदी साहित्य के सबसे बड़े सिनेमा लेखक थे। उनके लिखे पर 2 दर्जन से अधिक फिल्मों का निर्माण हुआ ।जिनमें से अधिकतर सफल रही। झील के उस पार, दाग, काजल, सावन की घटा, पत्थर के सनम, नीलकमल, खिलौना, कटी पतंग, शर्मीली, नया जमाना, जुगनू, जोशीला, अजनबी, भवर, महबूबा आदि। 1987 में रिलीज हुई राजेश खन्ना, श्रीदेवी की फिल्म "नजराना "उनकी आखिरी फिल्म थी जो उनकी मौत के बाद रिलीज हुई और हिट भी हुई। एक समय तो ऐसा भी रहा कि पहले फिल्में आती थी और बाद में वही कहानी उपन्यास के रूप में भी प्रकाशित होती थी लेकिन फिर भी उनकी लोकप्रियता में कोई कमी नहीं आई। परंतु दुर्भाग्यवश ऐसे कामयाब और लोकप्रिय लेखक को हिंदी साहित्य की मुख्य धारा ने बतौर साहित्यकार कभी स्वीकार नहीं किया।

70 के बाद सिनेमा लेखन में जो साहित्यकार नजर आए उनमें राही मासूम रजा, धर्मवीर भारती, राजेंद्र यादव, कमलेश्वर, मन्नू भंडारी प्रमुख है किंतु इनमें सफलता कमलेश्वर जी ने पाई। उन्होंने साहित्य और सिनेमा दोनों की भूमिकाओं का सुंदर सामंजस्य किया। सिनेमा जगत में पूरी धूमधाम से उनकी कलम चली। सर्वश्रेष्ठ पटकथा लेखन का फिल्म फेयर उन्हें मिला तो साहित्य अकादमी से भी वह सम्मानित हुए। साहित्यिक परिधि से लेकर बड़े परदे और टीवी तक कहीं भी उनकी कलम नाकाम नहीं हुई। सौ के लगभग फिल्मों में उन्होंने पटकथा संवाद लिखें तो उनकी अन्य कृतियों पर भी सफल फिल्मों का निर्माण हुआ। उन्होंने सारा आकाश, आंधी, अमानुष और मौसम जैसी फिल्मों के अतिरिक्त मिस्टर नटवरलाल, द बर्निंग ट्रेन, राम बलराम जैसी फिल्मों सहित 99 हिंदी फिल्मों का लेखन किया। टेलीविजन के लिए कई सफल धारावाहिक लिखें। जिनमें चंद्रकांता, युग, बेताल पच्चीसी, आकाशगंगा, रेत पर लिखे नाम आदि प्रमुख हैं। भारतीय कथाओं पर आधारित पहला साहित्यिक सीरियल "दर्पण "भी उन्होंने ही लिखा।

दूरदर्शन पर साहित्यिक कार्यक्रम पत्रिका की शुरुआत इन्हीं के द्वारा हुई तथा पहली टेलीविजन 15 अगस्त के निर्माण का श्रेय भी इन्हीं को जाता है। उपन्यासकार के रूप में "कितने पाकिस्तान" ने इन्हें सर्वाधिक ख्याति प्रदान की और इन्हें कालजई साहित्यकार बना दिया। फिल्म जगत को लेकर उनका कहना था_ मैंने अपने आप को महा मिसफिट नहीं पाया...... मेरे पास वही जुबान थी, जिसकी जरूरत वहां होती है। वास्तव में वे सिनेमा की जुबान समझते थे इसीलिए सफल हुए और जो नहीं समझते थे वह बहुत आगे नहीं बढ़ पाए।

हिंदी फिल्म जगत में जितनी सफलता कवियों और शायरों को मिली उतनी सफलता कथाकार को नहीं मिल पाई। जिसका एक कारण यह भी हो सकता है कि कथाकारों की कथा का कैनवास अत्यधिक विस्तृत होता है और उनमें शब्दों की महत्ता सर्वोपरि होती है जबकि सिनेमा में ऐसा नहीं होता। सिनेमा को अपने संपूर्ण विस्तार को दो से 3 घंटों के अंदर दृश्यों के द्वारा समेटना होता है और यहां शब्द से अधिक महत्वपूर्ण प्रस्तुति और अभिव्यक्ति होती है। नाटक के चारों अवयव वाचिक, सात्विक, कायिक और आहार्य सिनेमा में आकर शब्दों, अलंकारों पर भारी पड़ने लगते हैं। फिल्मी दृष्टि से नाटक और एकांकी ही सिनेमा के सबसे नजदीकी संबंधी नजर आते हैं। कवियों और शायरों पर कोई बंधन नहीं होता। उन्हें तो परिस्थिति के अनुरूप गीत या ग़ज़ल लिखनी होती है। सिनेमा के अन्य आयामों से उन्हें कोई सरोकार नहीं होता।

नौवें दशक में आई भूपेन हजारिका की फिल्म "रुदाली" ने समाज, साहित्य और सिनेमा के त्रिकोण को आर्ट सिनेमा के सीमित ढांचे से बाहर निकालने में अहम भूमिका निभाई और इस धारणा को पुनः स्थापित किया कि साहित्य से जुड़ी और समाज का वास्तविक अंकन करने वाली फिल्में भी हिट हो सकती हैं। बशर्ते उनमें निहित साहित्यिक संवेदनाओं का सिनेमाई रूपांतरण सफलतापूर्वक किया जाए। बाद में "परिणीता" और "थ्री इडियट" जैसी फिल्मों ने भी इसी धारणा को पुष्ट किया।

निष्कर्ष

वर्तमान समय की बात करें तो यह देखना अच्छा लगता है कि हिंदी के अनेक युवा लेखक सिनेमा की ओर बढ़ रहे हैं। हिंदी साहित्य के ही उत्पाद मनोज मुंतसिर

आज हिंदी सिनेमा के बड़े गीतकार के रूप में उभरते हुए बाहुबली के बाद आदि पुरुष जैसी मेंगा बजट फिल्म के संवाद लिख रहे हैं ।तो वही हिंदी के प्रसिद्ध कवि कुमार विश्वास को महारथी कर्ण पर बनने जा रही वासु भगनानी की महत्वाकांक्षी फिल्म की पटकथा,गीत और संवाद लिखने के लिए साइन किया गया है। साथ ही सत्य व्यास के उपन्यास पर जहां वेब सीरीज का प्रसारण हो चुका है वही नीलोत्पल मृणाल, नवीन चौधरी तथा दिव्य प्रकाश दुबे आदि और भी कई युवा लेखकों की रचनाओं पर सिनेमाई करार हुए हैं जो आने वाले समय में सामने आएंगे। अंततः यह कहा जा सकता है कि हिंदी साहित्य और सिनेमा का अतीत भले ही बहुत अधिक चमकदार न रहा हो लेकिन आज के इस नए दौर में हिंदी साहित्य और सिनेमा की तस्वीर बदल रही है जो कि निश्चित रूप से आने वाले समय के लिए एक उम्मीद की किरण जगाती है। हिंदी फिल्मों का वर्तमान परिदृश्य परिवर्तित हो चुका है। आज हर तरह की फिल्में बन रही है। विषयों में इतनी विविधता पहले कभी भी नहीं दिखाई पड़ी। छोटे बजट की फिल्मों का बाजार फल-फूल रहा है। साहित्यिक कृतियों पर फिल्म बनाने की समझ रखने वाले युवा हिंदी भाषी फिल्मकारों की पंक्ति तैयार हो चुकी है। आज समाज को साहित्यिक मानसिकता वाले फिल्म निर्माताओं की आवश्यकता है। जिससे समाज का उचित मार्गदर्शन हो सके। आज भी ऐसे अनेक उपन्यास हैं जिन पर यदि फिल्में बनाई जाए तो समाज निश्चित ही सही रास्ता प्राप्त कर सकता है गिरते मूल्यों को बचाने के लिए अच्छे उपन्यासों पर काम होना आवश्यक है। विधा या कला की दृष्टि से साहित्य और सिनेमा अलग-अलग हैं परंतु दोनों यदि सफर करते हैं तो एक दूसरे के सहायक बनेंगे साथ ही मनुष्य की कलात्मक दृष्टि का विकास भी हो सकेगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. साहित्य और सिनेमा_डॉक्टर शैलजा भारद्वाज
2. आधुनिक पत्रकारिता_डॉ अर्जुन तिवारी
3. साहित्य, सिनेमा, समाज_जनसत्ता दिसंबर 11, 2016
4. समकालीन सिनेमा में राष्ट्रवाद_शौव्य कुमार पांडेय
5. भारतीय सिनेमा एक अनंत यात्रा, प्रसून सिन्हा

6. सिन्हा प्रसून, भारतीय सिनेमा, श्री नटराज प्रकाशन दिल्ली, प्रथम संस्करण_ 2006

7. डॉ देवेंद्र नाथ सिंह, डॉ वीरेंद्र सिंह यादव भारतीय हिंदी सिनेमा की विकास यात्रा एक मूल्यांकन ,पेसिफिक पब्लिकेशन दिल्ली संस्करण 2012